

आचार्य शिवपूजन सहाय के गांव उनवांस की यात्राकथा
किस लिए उदास है उनवांस!

-अश्विनीकुमार आलोक

जिंदगी में हिस्सा बनकर मौजूद रहने की किस्मत सदा कहां रह पाती है! न जाने कोई हिस्सा कब किस्सा बन जाये। यादों में तब भी पड़ी रहती है जिंदगी। कि यादें हमारी मसरूफियत से किसी दिन बचाये न बचेंगी, तब यादें किस्सों में किधर बिखर जायेंगी, कह नहीं सकते। फ्रांसिस बुकानन ने शाहाबाद गजेटियर में कुछ नदियां लिखी थीं, नदियों के नाम लिखे थे। नदियां पानी से लिखी गयीं जैसे पानी के भाव बिक गयीं। पानी केरा बुदबुदा। 1812-13 में बिहार और अवध की सीमा पर एक नदी बहती थी, आज भी बहती है। पर बहने सा नहीं बहती। धर्मावती नाम है उसका। बसही, खीरी के रास्ते दर्जनों गांवों को छूती हुई कर्मनाशा की ओर चली थी। नदियों का नाम कोई धरता है, या धरा जाता है, कह नहीं सकते। नदियां जीवन में आती हैं जीवन देने। धर्मावती आयी थी, तो करीब सौ गांवों को जीवन मिला था। न जाने उसका पानी कहां विलुप्त हो रहा है कि लोग धर्मावती का नाम तक भूलने लगे हैं। एक नदी और बह चली, उसके पानी के पानीपन ने काया को कंचन बनाने के लिए पैंतीस किलोमीटर की यात्रा की। रोहतास जिले के करंज गांव से बक्सर जिले के धनसोई गांव की यात्रा। नदी भी 'कंचन' कहायी। लेकिन गांव ने कंचन को 'कोचान' कहा। अपनी बहन -बेटियों के नाम घर के भाई-बाप ही बिगाड़ते हैं, इस बिगाड़ का उन्हें अधिकार है। कोचानो इटाढ़ी प्रखंड की ठोरा नदी में विलीन हो गयी। अब पानी नहीं रहा। जस मानस की जात, देखत ही छुप जात है, ज्यों तारा परभाता। मनुष्य बदले, तो नदियां भी नदी की तरह नहीं रह सकीं। इन्हीं धर्मावती और कोचानो के बीच गेरुआ बांध के किनारे कभी बगेड़ियों का झुंड उतरता था, ऊदबिलाव उस झुंड पर झपटने को उस्तादी मानते थे। हारिल सुग्गा और बाया चिड़ें पेड़ों से धनखेतों में उतरते-विचरते थे। अब कुछ न बचा। कुछ काले हिरण अवश्य बचे हैं, जो गेरुआ बांध को टपते-डेबते किसी सुबह रोहतास की सीमा को लांघकर बक्सर की सीमा में प्रवेश कर जाते हैं, शाम में घर लौटते हुए अपने साथ

बक्सर का अपनत्व और आशीर्वाद भी उठा लाते हैं। उसी गेरुआ बांध के समीप स्थापित उच्च विद्यालय को हमने दूर से देखा। यह धारणा स्वाभाविक ही मेरे मन में उतर आयी कि उनवांस गांव में आचार्य शिवपूजन सहाय के घर के समीप स्थापित होने के कारण आचार्यवर की शिक्षा का यही केंद्र रहा होगा। लेकिन ऐसा नहीं था। कवि लक्ष्मीकांत मुकुल ने बताया कि शिवपूजन बाबू की शिक्षा तो आरा में हुई थी, तो इस स्कूल से उनका वास्ता हो ही नहीं सकता। लेकिन मनुष्य जिस मिट्टी में जन्म लेता है, उससे कटकर भी कहां हट पाता! कवि बैरागी प्रभाष चतुर्वेदी और उनके पिता प्रेमशंकर चौबे के बड़े से मकान से निकलकर हम उस स्कूल तक जाना चाहते थे। लेकिन रास्ता चारपहिया वाहन के लायक नहीं था। सीताराम उपाध्याय संग्रहालय के सरकारी वाहन को हम आचार्य शिवपूजन सहाय के भाई के घर के समीप छोड़ कर आये थे। अमूमन गांव में रास्ते होते हैं, गलियां नहीं। परंतु उनवांस का वह इलाका शहर की चहल-पहल भले नहीं रखता है, गलियों की तरह घुमाव और संकीर्णता में उलझ कर रह गया था। उन्हीं गलियों में से निकलकर आये एक बुजुर्ग ने विनत भाव से अनुरोध किया- "ऐसे आते-जाते आप आचार्य शिवपूजन सहाय को पढ़-जान सकते हैं, परंतु भोलानाथ को समझे बगैर शिवपूजन को कभी नहीं समझ पायेंगे। एक दिन गांव में घूमियेगा, तो भोलानाथ के आचार्य शिवपूजन सहाय बनने का हवा- पानी आपसे बोलेगा- बतियायेगा। संकोच उतरेगा, तभी कुछ सोच जुटाया जा सकता है।" बुजुर्ग की राय गलत नहीं थी। लेकिन मुझे शाम तक बक्सर में कोई ट्रेन पकड़नी थी कि पटना लौट सकूं। पता चला कि आचार्य शिवपूजन सहाय कहीं से आते थे, तो उसी शिवमन्दिर में पूजा-अर्चना करते थे। उच्च विद्यालय के अहाते में न जाने कबसे खड़ा है वह शिवमन्दिर। उन दिनों से, जब वह विद्यालय नहीं था। मैं अकेला नहीं था। मेरे साथ सीताराम उपाध्याय संग्रहालय के संग्रहालयाध्यक्ष डॉ. शिव कुमार मिश्र, कवि लक्ष्मीकांत मुकुल, बैरागी प्रभाष चतुर्वेदी, पत्रकार अभिजीत और शिवपूजन सहाय के भाई के पौत्र बबलू भी थे। पर हम उस मंदिर पर उस रास्ते सिर्फ पैदल ही जा सकते थे। हमारी चारपहिया गाड़ी लेखक कर्मेदु शिशिर के दरवाजे के समीप रुक गयी थी। घुमावदार रास्तों में

अपने पांव ही साथ देते हैं। उस मंदिर पर जाने के लिए हमें गेरुआ बांध के रास्ते निकलना पड़ता। कठिन धूप असह्य हो रही थी। बबलू जी ने आश्वस्त किया कि वह उस मंदिर का फोटो खींच कर भेज देंगे। तब हम लौट चले। लेकिन हमारी यात्रा का मुख्य उद्देश्य जिस धरती को स्पर्श करना था, वहां हम अभी गये ही नहीं थे। वह जमीन, जहां शिवपूजन सहाय ने जन्म लिया था। मुझे बताया गया कि वहां कुछ नहीं है। कुछ डिसमिल जमीन मात्र है, जिसे चाहरदीवारी से घेरकर ताला मार दिया गया है। मैंने जिद न छोड़ी, तो कोई चाभी ले आया। हम उन दीवारों के बीच जाकर खड़े हो गये, जहां कुछ सूखे फूल धरती पर बेसुध बिखरे पड़े थे।

बक्सर के किसी गांव के थे डॉ. ब्रजकुमार पांडेय। वह बीते पचास वर्षों से हाजीपुर में रहते थे। जब उनसे मैंने आचार्य शिवपूजन सहाय के गांव जाने का रास्ता पूछा था, तो उन्होंने बताया था कि चौसा रेलवे स्टेशन से उनवांस गांव जाया जा सकता है। उन्होंने उधर के किसी व्यक्ति का फोन नंबर देने का वादा भी किया था। किन्तु दुर्भाग्य कि मैंने आचार्य शिवपूजन सहाय के गांव जाने की जब तक योजना बनायी, ब्रजकुमार पांडेय स्वयं संसार से चले गये।

वह रास्ता बंद हुआ, तो दूसरा रास्ता बेहद सरल और उत्साहजनक मिला। प्रसिद्ध पुरातत्त्वविद डॉ. शिव कुमार मिश्र बक्सर के सीताराम उपाध्याय संग्रहालय में संग्रहालयाध्यक्ष बनकर पहुंचे। मैंने उन्हें फोन पर निवेदन किया कि वे मुझे आचार्य के गांव ले चलें। शिव कुमार मिश्र सामान्य संग्रहालयाध्यक्षों की भांति सिर्फ नौकरी नहीं करते। वह पुरातत्त्व अन्वेषण और विश्लेषण के लिए बहुत परिश्रम करते हैं। 'मिथिला भारती' का बरसों से संपादन करते हुए उन्होंने अपनी इतिहास दृष्टि का व्यापक उपयोग किया है। उन्होंने मुझे बार-बार बक्सर बुलाया। लेकिन जिस दिन मुझे फुर्सत मिली, मैं बीमार हो गया। तब भी नहीं माना।

हमारे गांव में एक कहावत है 'मन अनुराग, तो गाओ गीत'। अर्थात् किसी प्रकार का सत्कर्म-अपकर्म बिना मन के अनुराग के नहीं कर सकते। यह अनुराग देह का धर्म है, मन का बाद में। देह को स्वास्थ्य चाहिए। विकट भागदौड़ में मैं अक्सर देह को भूल जाता हूँ, यह जानते हुए भी कि दुर्लभ मानुष जन्म है, देह न बारम्बार।

मैंने उस दिन आचार्य शिवपूजन सहाय के घर जाकर वंशजों से मिलने की योजना बना तो ली थी, रात में डॉ. शिवकुमार मिश्र को कह भी दिया था कि आऊंगा। परंतु उसी रात बुखार और जुकाम ने हिम्मत पस्त कर दी। शिवकुमार मिश्र को मेरी हालत कहां पता थी, उन्होंने सुबह-सुबह फोन किया। मेरे मुंह से निकल गया कि आऊंगा। थकावट और शरीर की असहमति के बीच मेरा मन फिर उड़ चला।

महात्मा गांधी सेतु पर असामान्य भीड़ थी, गाड़ियां चींटियों की चाल में भी लगातार ससरतीं, तो ढाई घंटे नौ किलोमीटर की दूरी पार करने में नहीं लगते। वक्त इतना लगा कि सुबह की सारी ट्रेनें गुजरती चली गयीं। एक साथ तब भी करीब पौने बारह बजे पटना जंक्शन से दो ट्रेनें खुलीं, उनमें से एक पटना-कोटा एक्सप्रेस में मैं चला जा रहा था।

मुसाफिर अपनी मंजिल पर पहुंच कर चैन पाते हैं,
वो मौजें सर पटकती हैं जिन्हें साहिल नहीं मिलता।

करीब दो बजे मैं बक्सर रेलवे स्टेशन पर पहुंच गया। शिवकुमार मिश्र ने वहां एक युवक को भेजा था, मुझे ले जाने को। बक्सर की यह सड़क मेरे लिए बहुत अपरिचित नहीं थी। परंतु एक बार आने-जाने से कोई परिचय प्रगाढ़ नहीं हो जाता। जब साहित्य-हृदय मोहन प्रसाद बक्सर में डीडीसी थे, तो एक बार उनसे मिलने आया था। इसी तरह चलते हुए दुकानों पर लगे बोर्ड पढ़े थे, चौराहों की भीड़ से निकलकर पहुंचा था। बाकी तो तब भी सब रह गया था। बक्सर का इतिहास -पुराण एक दिन के भ्रमण से नहीं समझ सकते। समकालीन संदर्भ और अंग्रेजी हुकूमत के वक्त का इतिहास बक्सर के बक्से से बहुत लोगों ने खोले पढ़े, पर पूरा पढ़ा न गया। मेरी यह यात्रा तो बक्सर के संदर्भ में थी ही नहीं, बेहद वस्तुनिष्ठ थी। मुझे सिर्फ आचार्य शिवपूजन सहाय के गांव उनवांस जाना था।

मुझे शिवकुमार मिश्र का वह दूत जैसे ही सीताराम उपाध्याय संग्रहालय में लेकर गया, बरामदे पर बैठे तीनों लोग अदब से खड़े हो गये। शिवकुमार मिश्र ने अपने हृदय की तरह संग्रहालय के परिसर को स्वच्छ और निस्पृह बनाया था, मन प्रसन्न हो गया। उन्होंने मुझे सुस्ताने का वक्त न दिया, कहा- "पहले ही विलंब हो

चुका है। गाड़ी बाहर खड़ी है।" मुझे शिवकुमार मिश्र के घर जाना था, लेकिन विलंब हो चुका था। वह मेरे लिए घर से भोजन बनवाकर संग्रहालय में ले आये थे। पालक पराठा, खीर, मिठाई और आलूदमा मैंने जल्दी से हाथ-मुंह धोया और खाकर तैयार हो गया। दस मिनट उन्होंने संग्रहालय के दुर्लभ और अलभ्य पुरावशेषों की ओर मुझे घुमाया, उनके परिश्रमी व्यक्तित्व से संपन्न हुए संग्रहालय के सौंदर्य ने मुझे अभिभूत कर दिया। एक-दो दिन ठहर जाता, तो संग्रहालय की धरोहरों को पढ़-लिख लेता।

करीब बीस किलोमीटर दक्षिण इटाढ़ी मार्ग पर हमारी गाड़ी बढ़ी जा रही थी। हम अर्थात् मैं, शिवकुमार मिश्र और एक स्थानीय पत्रकार अभिजीता आचार्य शिवपूजन सहाय के गांव के समीप हमारी प्रतीक्षा में कवि लक्ष्मीकांत मुकुल खड़े थे। लक्ष्मीकांत मुकुल जहां खड़े थे, वह जगह पंचायत भवन के करीब थी। यह उनवांस गांव का प्रवेश द्वार कहा जा सकता है। एक हनुमान मंदिर और उसी के निकट पंचायत भवन। इटाढ़ी प्रखंड मुख्यालय के कुछ ही किलोमीटर की दूरी पर उनवांस गांव है। पुराने किसानों और जमींदारों का गांव होगा, लेकिन गांव के लोगों का मिजाज भी अब गांव-सा नहीं रहा। प्रतीत यह हुआ कि नयी पीढ़ी के लोगों ने गांव में कोई उदासी उतार दी। उपेक्षा से उदासियां उपजती हैं। लोग बक्सर, आरा, पटना अथवा पड़ोस के बड़े शहर बनारस की ओर रुख कर चले। एक अजीब-सी अरुचि को झेलते हुए उनवांस के पुराने घरों का जीर्णोद्धार कम ही हुआ। जीर्णोद्धार के नाम पर कुछ हुआ भी, तो यह कि वंशबेलि बढ़ी, तो पूर्वजों के निर्माणों को दीवारों से पाट दिया गया। हमारी गाड़ी गांव की आबादी शुरु होने से पूर्व रुक गयी। यह बड़ा-सा परिसर था। एक बड़ा-सा पोखर, सरकारी धन से सौंदर्यीकृत। सीढ़ियों से उतरकर पानी में पांव डाले रखने का निरापद सुख सहज ही सुलभ था इस पोखर में। लेकिन मौसम का मिजाज अनुकूल नहीं था। मेरे लिए तो और भी असह्य। सुबह में बुखार और जुकाम में उलझी हुई मेरी काया शर्ट के नीचे एक तह स्वेटर में लिपटी हुई थी, ऊपर से मार्च महीने के पहले हफ्ते में सूर्य का उत्ताप सीधे चानी को भेद रहा था। गाड़ी से निकलते ही एक शुष्क और निष्ठुर प्राकृतिक वातावरण हममें आह्लाद जगाने को कम ही व्यग्र था, आतिथ्य की सहिष्णुता मनुष्यता को प्रकृति के समर्थन

ही से उदार बनाती है। प्रकृति का स्वभाव थोड़ा स्थिर होता, तो यात्रा का सामान उसी तरह से निर्धारित हो जाता है। हमारे गांव में इस मौसम को 'दोरस' कहा गया है, दो रसों का द्रंद्र, या दोष का आलंब। परिसर में पोखर, पौधे और एक मंदिर। लेकिन इनमें मेरी कोई पुरातत्विक रुचि होती, तो हमारी यात्रा का नेतृत्व कर रहे डॉ. शिवकुमार मिश्र हमारा ज्ञानवर्धन अवश्य करते। इस परिसर के संबंध में लक्ष्मीकांत मुकुल को भी बहुत ज्ञान नहीं था। शिलालेख था, जो परिसर के मुख्य द्वार पर आचार्य शिवपूजन सहाय की मूर्ति के नीचे सुरक्षित था। यह मूर्ति तत्कालीन डीएम धर्मेन्द्र कुमार सिंह के समय कुछ ही वर्ष पूर्व स्थापित की गयी थी। मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने 'जल जीवन और हरियाली' योजना के तहत इसे विकसित किया था। इस बड़े-से परिसर के संबंध में बाद में मुझे आचार्य शिवपूजन सहाय के भाई के प्रपौत्र बबलू जी ने बताया। उन्होंने बताया कि यह बावन बीघे का परिसर गांव उनवांस के एक साहुकार ने सार्वजनिक सुविधाओं के लिए दान किया था। शिवमन्दिर और पोखर उन्हीं के बनवाये हुए थे। साहुकार के बाद की पीढ़ी के लोग उनवांस में अब भी रह रहे हैं, लेकिन उनकी जर्मींदारी और उनके धन का स्वरूप ऐसा बदल चुका है कि अब वे पहचाने भी कम ही जा सकें। साहुकार का नाम संभवतः दाता साव था। गांव में किंवदंती है कि किसी अंग्रेज अधिकारी ने उनसे कुछ धन मांगा, तो उन्होंने घोड़े पर चांदी के सिक्के लाद दिये थे। गंगा और अनेक छोटी सहायक नदियों के किनारे बसा हुआ उनवांस गांव बक्सर जिले के दक्षिणवर्ती गांवों में से एक है। उनवांस के पंद्रह किलोमीटर दक्षिण जाने के बाद कौआकोच पुल है और उसी के बाद रोहतास जिला। हमारी यात्रा में साथ चल रहे कवि लक्ष्मीकांत मुकुल का घर भी रोहतास जिले का गांव था, मयरा गांव। दाता साव के बावन बीघा पोखरे के बाद कुछ ही फर्लांग की दूरी पर एक और विवादित भूखंड था। लक्ष्मीकांत मुकुल हमें वहां भी ले गये। एक असहाय-सा कुंआ, जो बुझे जलस्रोतों की उदास स्मृतियों में न जाने कब अपने अस्तित्व की आंधी में गिर गया। असंयत गड्ढे, आवारा झाड़ियां और अनिर्वचनीय दारिद्र्य। इन सबके बीच कोई अपठनीय शिलालेख, जिसे पता नहीं किसी पुराविद् ने पढ़ने की चेष्टा की या नहीं। एक उपेक्षित सा मंदिर यहां भी था,

बड़े से परिसर में अपरिचित घास-झाड़ और धूल में पड़ी हुई आचार्य शिवपूजन सहाय की एक और मूर्ति। यह मूर्ति भी बहुत पुरानी नहीं थी। विवादित ज़मीन पर दीपक कुमार सिंह नामक डीएम ने यह मूर्ति कोई एक दशक पहले स्थापित की थी। आचार्य शिवपूजन सहाय शिवजी के भक्त थे। इन मंदिरों में वे तब जरूर आते थे, जब वे पटना, आरा, कोलकाता अथवा अन्यत्र से लौटते थे।

हमारी गाड़ी जहां रुकी, वहां कभी पुस्तकालय हुआ करता था। वागीश्वरी दयाल पुस्तकालय और राजकुमारी वाचनालय। शिवपूजन सहाय ने उसकी स्थापना अपने माता-पिता के नाम पर की थी। अब एक कमरे का घर बचा था, कोई राजस्व कर्मचारी उसमें रहते थे। लक्ष्मीकांत मुकुल ने बबलू जी को आवाज़ दी। बबलू जी आचार्य शिवपूजन सहाय के छोटे भाई के पौत्र हैं, मनोरंजन सहाय के बड़े बेटे विनोद कुमार के बेटे और सुख्यात वामपंथी लेखक तथा पूर्व प्राध्यापक कर्मेंदु शिशिर के भतीजे। यह कमरा बहुत स्वच्छ नहीं था, दालान जैसा था। इसीलिए हमें उसके पश्चिमी किनारे पर बने एक घर के दरवाजे पर बैठाया गया। चाय-बिस्कुट के साथ परिवार और परिजनों के विषय में बताने वाले लोग बहुत नहीं थे। एक तो बबलू जी थे, दूसरे उनके पिता विनोद कुमार। विनोद कुमार ने बहुत वक्त आचार्य शिवपूजन सहाय के साथ गुजारा था, पटना में उनके साथ रहते थे। लेकिन अस्सी बरस के इस बुजुर्ग के पास वैसा कोई इल्म नहीं कि क्या बताया जाये। मैं भी जो पूछ सका, वह शायद ही कोई और पूछने आया होगा। वर्ना समूचे देश में पत्रकारों और लेखकों की एक समुन्नत पीढ़ी खड़ी करनेवाले हिन्दी साहित्य और भाषा के सबसे कम पढ़े-लिखे पंडित के जीवन-जगत को जानने-समझने की उत्सुकता लेकर कम ही लोग आते हैं उनवांस गांव। लोगों को पता है कि उनवांस गांव में होने-सा कुछ नहीं। न घर, न घरवाले। गांव के लोगों में जैसे एक-दो लोग ही बचे होंगे, जिन्होंने आचार्य शिवपूजन सहाय को देखा हो। यदि कुछ बूढ़े लोग होंगे, तो वे शिवपूजन सहाय को नहीं, भोलानाथ को जानते रहे होंगे। तब, कौन आये उनवांस गांव!

उनवांस गांव का कोई ऐसा ऐतिहासिक पक्ष नहीं, जिसे कहा-सुना जा सके। इतना कह सकते हैं कि करीब तीन सौ बरस कब्ल यह गांव आबाद हुआ था।

स्थानीय आबादी भले कुछ रही हो, परंतु अधिकांश आबादी उत्तर प्रदेश के विभिन्न अंचलों से स्थानापन्न थी। आचार्य शिवपूजन सहाय के दादा आये होंगे। उनके नाम का स्मरण विनोद कुमार को नहीं। ये वह जमाना था, जब लोभ-मोह की व्याप्ति इतनी भयानक नहीं थी। लोग साधु की तरह उठते थे और कंबल-कमंडल लेकर नयी जगह पर जम जाते थे। आचार्य शिवपूजन सहाय के दादा उत्तर प्रदेश के गाजीपुर ज़िले के शेरपुर नामक किसी गांव से आये थे। अकेला परिवार। न गोतिया, न दयादा बही-खातों की असलियत जानने वाली यह जाति साहुकारों के मुहल्ले में रोजगार देखती थी। उनवांस में उन दिनों कुछ अच्छे और नामचीन व्यवसायी थे। गाजीपुर के शेरपुर गांव वाली जमीन-जायदाद का कोई अता-पता नहीं। परंतु उनवांस में करीब डेढ़ सौ बीघे का रकबा आचार्य शिवपूजन सहाय के पिता वागीश्वरी दयाल ने अर्जित किया था। वागीश्वरी दयाल के तीन बेटे हुए शिवपूजन सहाय, रामपूजन सहाय और देवनंदन लाल। शिवपूजन सहाय के दो बेटे हुए आनंदमूर्ति और मंगलमूर्ति। रामपूजन सहाय के शारदारंजन। देवनन्दन लाल के मनोरंजन लाल और राजीव रंजन लाल। मनोरंजन लाल के विनोद, कर्मेदु शिशिर और प्रभाता। राजीव रंजन के अरुण और अशोक। लेकिन इतनी जाल-फौज में से किसी को उनवांस की कोई दरकार नहीं। सब बाहर-बाहर। महीने-सालभर में कोई आया, तो आया। आचार्य शिवपूजन सहाय ने पटना के पुनाईचक में एक मकान बनवाया था। उस पर भी आचार्य के बेटों आनंदमूर्ति और मंगलमूर्ति के बीच विवाद है। आचार्य शिवपूजन सहाय के बेटों को वंशानुगत करीब सत्तर बीघे जमीन हाथ आयी थी। बचा क्या? चार कट्टा केवल। इस भूखंड पर कोई चारपहिया वाहन नहीं जा सकता। तिकोने बनाते रास्तों का अपना दुःख है, कि रहवासियों के ख्वाहिशात बढ़ते गये, जमीं सहमती-सिकुड़ती गयी। इस भूखंड में देखने को कुछ नहीं। तब भी मैंने चाभी मंगवाकर चाहरदीवारी को एक सिरे से दूसरे सिरे तक नाप दिया, गोया यह पैगाम छोड़ने के लिए कि आचार्य का रक्तवंश भले उनवांस को उपेक्षित कर गया हो, शब्दवंश अभी जिंदा रहेगा।

आचार्य शिवपूजन सहाय का शब्दवंश सिर्फ उनवांस या, शाहाबाद अथवा उनके गृहराज्य बिहार तक सीमित नहीं है। भाषा-व्याकरण, लेखन और साहित्यकर्म के अन्य अनेक पक्ष उन्होंने समृद्ध क्रियोकम पढ़े-लिखे लेखक का संपादक और साहित्य संशोधक होना साहित्य क्षेत्र के लिए सर्वथा असामान्य घटना है। उन्होंने करीब पचास वर्षों तक साहित्य की समर्पित सेवा की, शब्द साधना में लगी एक विशिष्ट पीढ़ी के लिए आचार्य की भूमिका निभाकर उसमें भाव, सौंदर्य और जीवन के स्वरूप का उन्मेष कराया। पटना, कोलकाता, लहेरियासराय और काशी के साहित्य समाज में आचार्य की उपस्थिति इतनी विशिष्ट रही कि वे उन शहरों में जहां-जहां से जुड़े, वहां से हटे नहीं। उनके बिना साहित्य गोष्ठियों की कल्पना तक नहीं की जा सकती थी। उस समय के न जाने कितने बड़े लेखकों की पांडुलिपियां पहले आचार्य शिवपूजन सहाय के सामने से गुजरीं, तभी उन्हें प्रकाशन हेतु भेजा गया। यह नहीं कह सकते कि उन्हें सिर्फ गद्य की समझ थी। प्रेमचंद के उपन्यासरं 'गभूमि' का भाषा-परिमार्जन आचार्य शिवपूजन सहाय ने किया था, तो जयशंकर प्रसाद के महाकाव्य 'कामायनी' के लिए उपयुक्त परामर्श दिये थे।

आचार्य शिवपूजन सहाय 1926 में पुस्तक भंडार, लहेरियासराय की पुस्तकों और सर्वप्रतिष्ठित पत्रिका 'बालक' को प्रकाशित कराने के लिए काशी आये थे। काशी उन दिनों साहित्य सक्रियता की धुरी हुआ करता था। काशी-बनारस की नियमित गोष्ठियों में आचार्य शिवपूजन सहाय की भूमिका बहुत थी। उन दिनों प्रकाशित हो रही संभवतः कोई पुस्तक आचार्य शिवपूजन सहाय की दृष्टि से गुजरे बगैर प्रकाशित नहीं होती थी। इस संबंध में विनोद शंकर व्यास ने लिखा है- "शिवजी स्वभाव के बड़े सरल हैं। अतएव बहुत जल्दी सब के प्रिय बन जाते हैं। उनमें अहंकार और अभिमान तनिक भी नहीं है। इसलिए सहृदयों को अपने समीप खींच लेते हैं। प्रसाद जी का बहुत निकट स्नेह उन्हें प्राप्त था। काशी में रहने पर हम लोगों के किसी भी जमघट में शिवपूजन सहाय न हों, ऐसा कभी न होता था। हम लोगों की मंडली में शिवपूजन जी का सम्मान विशेष रूप से था। पुस्तकों के संपादन, प्रकाशन का कार्य वे ही करते थे। इसलिए मेरी और प्रसाद की लिखी अधिकांश

रचनाओं से वे परिचित थे। उनका निर्णय ही अंतिम समझा जाता था। प्रसाद जी जब कुछ नयी रचना प्रस्तुत करते, तब शिवपूजन जी को सुनाये बिना उन्हें संतोष नहीं होता था।"

विनोद शंकर व्यास, प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद ही नहीं, आचार्य शिवपूजन सहाय को रामकृष्ण दास, लाला भगवानदीन, रत्नाकर जी, रामचंद्र शुक्ल और श्याम सुंदर दास की भी स्नेहिल मैत्री प्राप्त थी। आचार्य शिवपूजन सहाय उन दिनों के हिन्दी साहित्य लेखन में बड़े विद्वान, साहित्य संशोधक और प्रूफ रीडर थे। उन्होंने स्वयं बहुत नहीं लिखा, पर लिखवाया बहुत। उनके जैसा संपादक उन दिनों दूसरा कोई नहीं था। संपादक बिना लेखकीय प्रतिभा और साहित्य-भाषा की समझ के नहीं बना जा सकता। दूसरों का साहित्य संशोधित करने वाले संपादक की अपनी रचनात्मकता पर आघात पहुंचता है। आचार्य शिवपूजन सहाय के साथ यही हुआ। वह सिर्फ एक उपन्यास 'देहाती दुनिया' और सोलह कहानियां 'हठ भगत जी', 'अनूठी अंगूठी', 'तोता मैना', 'विचार मित्र', 'मुंडमाल', 'सतीत्व की उज्ज्वल प्रभा', 'विषपान', 'हतभागिनी', 'चंद्रतारा', 'प्रायश्चित', 'खोपड़ी के अक्षर', 'कुंजी', 'शरणागत रक्षा', 'मानमोचनी', 'कहानी का प्लाट', 'बुलबुल का गुलाब' ही लिख पाये। इस संबंध में श्री माधव ने 'परिषद' पत्रिका के जुलाई 1963 अंक में लिखा है: "शिवजी ने अपने जीवन में शायद हज़ारों पृष्ठ लिखे, परंतु उन्होंने काली स्याही की अपेक्षा लाल स्याही का ही उपयोग किया। गरज कि दूसरों के लिखे हुए को सुधारने-संवारने में उनके जीवन का अधिकांश समय गया और इस प्रकार पिछले पचास सालों में उन्होंने सैकड़ों पुस्तकों का संपादन किया। लेख सुधारे, प्रूफ देखे। प्रूफ के दो ही पंडित हिंदी में माने जाते थे, एक शिवजी और दूसरे शांतिप्रिय जी।

आचार्य शिवपूजन सहाय का जन्म बक्सर के उनवांस गांव में 19 अगस्त 1893 को हुआ था। गरीबी थी, आरा में अपने रिश्तेदार के यहां पढ़े और 1913 में मैट्रिक पास हुए। रोजगार तुरंत जरूरी था। बनारस कचहरी में नकलनवीस बन गये। लेकिन उस काम को चार सालों तक करने के बाद 1917 में आरा टाउन स्कूल में अध्यापक बन गये। 1920 में असहयोग आंदोलन में शामिल

हुए। 1921 ईस्वी में उन्होंने मास्टरी छोड़ दी और कोलकाता जाकर 'मारवाड़ी सुधार' पत्रिका का संपादन करने लगे। वहीं से वे मुंशी नवजादिक लाल श्रीवास्तव और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के संपर्क में आये। उन्होंने 'माधुरी', 'मतवाला' आदि विशिष्ट पत्रिकाओं का संपादन किया। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के संस्थापक मंत्री और बाद में निदेशक बने। उन्होंने 'हिंदी साहित्य को बिहार की देन' नामक पुस्तक शृंखला का संपादन कर बिहार की साहित्यिक प्रतिबद्धता और उसके साहित्येतिहास का प्रामाणिक आधार दिया। पटना से 'साहित्य' और 'परिषद्' जैसी विशिष्ट पत्रिकाएं निकालीं। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद और आचार्य शिवपूजन सहाय के संबंध में डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने 'परिषद् पत्रिका' जुलाई 1963 के अंक में लिखा है- "बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् सत्यमेव उनका कीर्ति स्तम्भ है। उसकी ईंट-ईंट बटोर कर तथा जोड़कर इस कीर्ति स्तम्भ को उन्होंने खड़ा किया और उनके अवेक्षण और श्रम का वरदान पाकर परिषद् निरंतर फूली-फली। कैसा विचित्र कल्पवृक्ष परिषद के रूप में वे छोड़ गए हैं। अपने वज्रासन से ध्यान की शक्ति द्वारा उन्होंने बहुत कुछ दिया। अनेक नए विषयों की उद्भावना योग्य लेखकों से करायी। उन ग्रंथों की अंतर्राष्ट्रीय ख्याति है। हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का 'हिंदी साहित्य: आदिकाल' और मोतीचंद्र जी का 'सार्थवाह' जो परिषद् के आरंभिक जीवन के प्रथम दो वर्षों में छपे थे, वे हिंदी जगत के गौरव की वस्तु हैं।"

आचार्य शिवपूजन सहाय ने हिंदी के अतिरिक्त भोजपुरी साहित्य को भी समृद्ध किया। उनकी रचनाएं 'शिवपूजन रचनावली' में संकलित हैं। उन्हें उन्नीस सौ साठ में भारत सरकार ने पद्मविभूषण सम्मान दिया और उनके नाम पर एक डाक टिकट भी जारी किया। उन्हें डिलिट की भी सम्मानोपाधि दी गयी। लेकिन आश्चर्य यह कि बिहार सरकार का राजभाषा विभाग बिहार के जिन करीब तीन दर्जन साहित्यकारों की जयंती मनाती है, उनमें लंबे समय तक आचार्य शिवपूजन सहाय का नाम सम्मिलित नहीं था। करीब एक दशक पूर्व इस भूल का सुधार कर लिया गया। आचार्य शिवपूजन सहाय पर लिखा-पढ़ा बहुत गया, तब भी बहुत कुछ

लिखना-पढ़ना शेष है। वीरेंद्र परमार ने उनके लेखन और जीवन पर परिश्रमपूर्वक शोध किया है। 21 जनवरी 1963 को उनका देहान्त हो गया।

आचार्य शिवपूजन सहाय ने ग्रामीण परिवेश की सरलता और जीवन संघर्षों को अपने साहित्य का विषय बनाया।

'देहाती दुनिया' से आंचलिक साहित्य का आविर्भाव माना जाता है, इसे आगे चलकर फणीश्वरनाथ रेणु ने साहित्य की एक विशिष्ट शैली के रूप में प्रतिष्ठित किया। विस्तृत महत्त्व का साहित्य प्रस्तुत करनेवाले आचार्य शिवपूजन सहाय ने गांव और उसके परिवेश को समझा-समझाया, परंतु उनके वंशजों ने उनकी धरोहरों को बचाना जरूरी नहीं समझा। उनके द्वारा स्थापित पुस्तकालय की कुछ पुस्तकें जिला पुस्तकालय, बक्सर में संग्रहित हैं। उनके बाल-बच्चे प्रायः उनकी स्मृति में कोई आयोजन नहीं करते। बक्सर शहर में उनके नाम पर कोई मार्ग या चौक-चौराहा नहीं। पटना में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद जिस मार्ग में है, सैदपुर का वह मार्ग आचार्य शिवपूजन सहाय मार्ग कहा गया है।

उनवांस की उदासियां आचार्य शिवपूजन सहाय की विद्वत्ता और अपने भोलानाथ के भोलेपन को आत्मसात किये रहेंगी। उनवांस में आचार्य का कोई स्मृति अवशेष नहीं बचाया जा सका। उनकी कुर्सी तक बेच दी गयी। उनवांस का एक निजी विद्यालय जिस निष्ठा से साल में एक बार आचार्य की स्मृति में कार्यक्रम आयोजित करता है, यदि पटना और लखनऊ में रहनेवाले उनके परिजन उसमें शरीक भी हो जाते, तो आचार्य की शब्दबेलि-वंशबेलि के अंतर्संबंध से भारतीय मनीषा को चिंतित होना न पड़ता। अपने ऋषि-पुरोधा के अवदान हमारी परंपरा-मर्यादा को शून्य में भ्रमित होने से रोकते हैं।

संपर्क : प्रभा निकेतन, पत्रकार कालोनी,
महनार, वैशाली, पिन- 844506, मो. 8789335785